स्वच्छंदतावादी काव्यधारा के परिप्रेक्ष्य में रामनरेश त्रिपाठी का लोक चेतना

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉधी राजकीय महिलामहाविधालय,
रायबरेली, उ.प्र

स्वच्छंदतावादी काव्यधारा की बुनियादी विशेषता रही है– उसकी लोक संपृक्ति। एवं स्वच्छंदतावादी रचनाकार शास्त्रों, पुराणों, रीतियों, परंपराओं के बजाए जनसामान्य की संवेदना से अपने आपको जोड़कर देखता है। रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में लोकचेतना की अभिव्यक्ति बहुत ही सशक्त रूप से हुई है। उनका लोक–साहित्य का संग्रह और उस पर टिप्पणियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं। 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' में निहित स्वच्छंदवादी चेतना को रेखांकित करने के साथ–साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि – त्रिपाठीजी की कल्पना मानव सर्मपथ पर चलने वाली है। इनका ग्राम गीत संग्रह करना इस बात को औश्र भी स्पष्ट कर देता है। अतः त्रिपाठी जी स्वच्छंदतावाद (रोमेन्टिसिज्म) के प्रकृत पथ पर दिखाई पड़ते हैं।'' आचार्य शुक्ल को त्रिपाठी जी स्वच्छंदतावाद के प्रकृत तथ पर इस कारण दिखाई देते हैं, क्योंकि उनकी समग्र रचनाधर्मिता कृत्रिमता, रहस्यवादिता और आलंकारिता से मुक्त है। वहाँ पर हृदय के सच्चे उद्‌गारों को अभिव्यक्ति मिली हे। रामनरेश त्रिपाठी के मन में अनलंकृत औश्र अकृत्रिम सौंदर्य के प्रति गहरे आकर्षण का भाव था, इस भाव की परिणति लोक–साहित्य के संकलन, प्रकाशन और उनके द्वारा लोक साहित्‍ की प्रबल पक्षधारता के रूप में होती है।

त्रिपाठी जी को साहित्य कर्म लोकचेतना की गहरी अन्तर्यात्रा है। लोकजीवन के प्रति उनके मन में सच्ची आस्था थी, सच्चा आदर भाव था। यही कारण है कि जबकि ''लोक गीत, लोक नृत्य, लोक कला आदि नागर सभ्यथा की दृष्टि में आदर की नहीं, कुमूहल और विनोद की वस्तुएँ रहीं'' हो तो ऐसे समय में लोक साहित्य को केन्द्रीयत प्रदान करके उन्होनें एक बड़ा काम किया था।

उनके अवदान को ध्यान में रखते हुए बनारसीदार चतुर्वेदी लिखते हैं कि ''उनके जिस कार्य को सबसे अधिक महत्व दिया जाएगा वह है ग्राम गीतों का संग्रह। इस विषय में तो वे हिन्दीवालों के पथ प्रदर्शक थे। आगे चलकर सर्वश्री देवेन्द्र सत्यार्थी, रामइकबाल सिंह 'राकेश', सत्येन्द्र जी तथा अन्य लेखकों ने इस काम को आगे बढ़ाया औश्र सत्यार्थी जी ने तो अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग ही इसी के लिए अर्पित कर दिया। ग्राम गीतों के संग्रह करने में त्रिपाठी जी को बड़ा परिश्रम करना पड़ा, बल्कि यों कहिये कि उसी असाधारधण परिश्रम के कारण उन्हें डायबिटीज (मधुमेह) की बीमारी हो गई, जिसने उनके शरीर को खोखला ही की दिया। उनके जीवन के दस वर्ष इस युद्ध में लग गये।''

असल में रामनरेश त्रिपाठी की स्वच्छंदतवृत्ति की सबसे प्रमुख विशेषता यही रही है कि वह लोकचेतना के बहुत गहरे सम्पृक्त होती है। यह काम उन्होनें लोक साहित्य के माध्यम से सम्पन्न किया था। 'कविता–कौमुदी–पांच' की भूमिका में उन्होनें इस स्वच्छंद चेतना को मुखरित किया है। त्रिपाठी जी की अपनी स्वच्छंदतवृत्ति के अनुरूप ही उन्हें

लगता था कि गांवों में लोक गीतों की एक जो दुनिया है वहां स्वच्छंदा है, उन्मुक्तता है। कल्पना में ही सही, भ्रम में ही सही वहां पर जो आजादी है वह संसार की ठोस विद्रूप विसंगतियों से निजात पाकर अनन्त और स्वच्छंद आश में प्रतिफलित होती है। जैसे इस नायिका के लिए जो प्रेम के सांसारिक प्रतिबन्धों को तोड़ने के लिए चिड़ियों की तरह प्रियतम के साथ स्वच्छंद आकाश में उड़ना चाहती है–

''जइसे अकास पे चिड़िया उड़तु है,
वइसे उड़ौ तोरे साथ्ज्ञ । सँवलिया रे।''

लेकिन वस्तुगत संसार की विषमता, यहां की भूख प्यास दुबारा जमीन पर ला पटकती है –

''भुखिया के मारे विरहा विसरिगा, भूमि गई कजरी कबीर।

देखि कै गौरी क मोहनी सुरीति, अब उठै न करेजवा में परी।।''

ऐसे मर्म–स्पर्शी लोकगीतों के संग्रहकर्ता त्रिपाठी जी को यदि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वच्छंदतावाद के प्रकृत तथ पर उचित ही अवस्थित करते हैं।

लोकसाहित्य के सौंदर्य के विषय में डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है कि चूंकि इसके रचयिता अचेतन कलाकार हैं, इसी कारण इसमें सहत सौंदर्य बोध तो मिलता है, पर छेनी की तराश का आभास नहीं मिलता। उनके अनुसार लोकसाहित्य की ''सहजता का मर्म है, उसकी लोक–कंठ द्वारा स्वीकृति, उसकी कसौटी, लोगों की लय मिला देना। उसे अलंकार की परवाह नहीं है, उसे चिंता है समानता की, और इसीलिए उसकी चिर नवीनता सुरक्षित है।'' दुनिया की अनेक भाषाओं में लोकसाहित्य का अत्यधिक महत्त्व रहा है। हर भाषा के बड़े–बड़े साहित्यकार लोकसाहित्य की पक्षधरता करते हुए पाये जोते हैं। इसका मूल कारण यही रहा है कि लोकसाहित्य जनता के हृदयोद्गार रहे हैं।

लोक साहित्य के महत्त्व को देखते हुए, मैक्सिम गोर्की ने लोगों को आह्वान किया है– ''शब्दों की कला लोकवार्ता से आरम्भ होती है। इन लोकवाताओं – लोक गीतों को एकत्र करो, उनका अध्ययन करो, उस पर काम करो। इससे तुमको और हम सब सोवियत रूस के गद्य तथा पद्य के लेखकों को विपुल सामग्री प्राप्त होगी। हम अपने अतीत को जितना अधिक जानेंगे, जितनी अच्छी तरह जानेंगे, उतनी ही अच्दी तरह, उनती ही सरलतापूर्वक, उतनी ही गहराई से और आनन्द के साथ हम उस वर्तमान के महत्त्व को समझ सकेंगे जिका निर्माण हम इस समय कर रहे हैं।'' इसी प्रकार लेनिन का अभिमत था कि ''इन गीतों में हम जन साधारण की आशा आकांक्षा की झांकी देख सकते हैं''

इस आलोक में यदि त्रिपाठी जी के लोक साहित्य की चेतनता का अध्ययन किया जाए तो हम पाएंगे कि इसके पीछे महज साहित्यिक उद्देश्य नहीं था। लोक गीतों, कहावतों और पहेलियों का श्रमसाध्य संग्रह उन्होनें सिफ कुतूहल वश या मनोरंजनार्थ नहीं कर डाला था, बल्कि इसके पीछे गहरा सामाजिक व सांस्कृति उद्देश्य निहित था। इसका सूचना वे ग्राम साहित्य (पहना भाग) के 'गीत यात्रा' और ''ग्राम साहित्य की रूपरेखा'' में जहां–तहां दिये हैं।

वड्सवर्थ ने अपनी कविताओं के बारे में बताते हुए लिखा है कि उनका रुझाव गांव के सामान्य जन जीवन की ओर इस करण हुआ कि वहां हृदय के भाव आसानी से अपनी अभिव्यक्ति के लिए बेहतर जमीन पा सकते हैं। वहां की भाषा में गैर पाबंदियां नहीं होती हैं। दूसरी बात यह कि ग्रामीण जीवन के व्यवहार अधिक टिकाऊ होते हैं, और मानवनीय संवेगों को प्रकृति के साथ बेहतर ढंग से जोड़ा जा सकता है। इसी कारण वर्ड्सवर्थ ने आग्रह किया कि कविता में शास्तीय भाषा के बजाए जनजीवन में प्रयुक्त भाषा का प्रयोग किया जाय।

वड्सवर्थ द्वारा जनता की संवेदना और भाषा की पक्षधरता के पहले यूरोपीय स्वच्छंदतावाद की पृष्ठभूमि में हम लोकसंवेदना की तमाम तरह की अभिव्यक्तियों के संकलन को पाते हैं। उदारहण के लिए पर्सों का लोकगीत संग्रह 'रेलिक्स' कैमोयनो का डच लोकगीत संग्रह 'लूसियड' नायवेलिंग्स एवं ग्रूडेन की अंग्रेती प्रेमाख्यानपरक (शिवैलरी काव्य) काव्यसंग्रह आदि का नाम लिया जा सकता है। एक और महत्त्वपूर्ण लोक गीत संग्रह मैक्फर्सन का 'ओशियन' है। लोकगीतों के ये संकलन यूरोपीय स्वच्छंदतावाद की नींव में है। यहां इसका उल्लेख अनावश्यकन होना कि एक तरफ औद्योगीकरण के कारण गांव के गांव अपनी भौगोलिक सामाजिक और ऐतिहासिक स्मृतियों से महरूम हो रहे थे, तो दूसरी और प्रबुद्ध संवेदनशील लोक इनके संकलन में लगे थे। निश्चय ही ये लोग स्वच्छंदतावादी चेतना से ओत–प्रोत थे। ये ऐसे लोग थे जो गांवों की साहित्यिक थाती को सुरक्षित कर लेना चाहते थे।

यूरोपीय रोमोंटिक कविता में बहुत अधिक लोक मिथक औश्र दंतकथाएं प्रेरक के रूप में हैं। एन्थोनी जॉन हार्डिंग ने अपनी अध्ययन में लोक साहित्य के मिथकों का स्वच्छंदतावाद पर प्रभाव को रेखांकित किया है।

जो स्थान यूरोपीय स्वच्छंदतावाद में मैक्पर्सन जैसे लोकगीत संग्रहकर्ताओं का है, वही स्थान हिन्दी स्वच्छंदतावाद में रामनरेश त्रिपाठी का है। ''पं. रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संकलित ग्राम गीतों का संग्रह 'कविता कौमुदी पांच', अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लोकगीतों में गुँथी हुई भावात्मक अभिव्यक्तियां किसी भी सरस व्यक्ति को छू सकने में समर्थ हैं। प्रेम श्रृंगार, ममता, संवेदन, करूणा आदि सब भावों की उन्मुक्त व्यंजना उन गीतों में भरी हुई है।'' वे निश्चित रूप से लोक साहित्य की दृष्टि से हिन्दी स्वच्छंदतावाद के एकमात्र हस्ताक्षर है। वे अनके साहित्यकारों के लिए प्रेरणा स्रोत बने होंगे। ध्यातव्य है कि निराला औश्र महावेदी वर्मा के कुछ गीतों में सीधे–सीधे लोक साहित्य का प्रभाव दिखता है।

कविता कौमुदी पांच की संकलना की भूमिका में उन्होनें अपनी लोक चेतनामयी स्वच्छंद वृत्ति उजागर किया है। उसमें उन्होनें अपनी मान्यताओं को प्रकरण किया है। रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार – ''प्रकृति संगीतमय है.....झरनों का अविराम नाद, पत्तें की मर्मर–धवनि, चंचल–जन का कलकल, मेघ का गरजना, पानी का छमाछम बरसना, आँधी का हाहाकरण, कलियों का चटखना, विक्षुब्ध समुद्र का ठहराव, मनुष्य की भिन्न–भिन्न भाषाएँ और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट, पतंग आदि की बोलियाँ ये सब उस संगीत के सहायक यंत्र तान–स्वर और लय है.... ग्राम गीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश हैं।''

असल बात यह है कि उनका ग्राम गीतों के प्रति आकर्षण इसी कारण है कि आज भी गांव प्रकृति की लय में है। ग्राम गीत प्रकृति के नाद को अभिव्यक्त करता है और ये जो नाना नाद औश्र लय से युक्त प्रकृति है, उसने ''प्रत्येक समाज में कवि उत्पन्न किये हैं। अहीरों के लिए विरहे तुलसी ने नहीं बनाये थे, न कहारों के लिए कहरवा सूरदास ने। धोबी, चमार, नाई, बारी, पासी औश्र कुम्हारों में कबीर, बिहारी, केशव, भूषण, देव और पद्माकर नहीं पैदा हुए थे। पर इन जातियों में भी कविता किसी न किसी रूप में वर्तमान है, और कई बार कहीं–कहीं तो वह इन कवियों की कविता के टक्कर की है।''

रामनरेश त्रिपाठी का लोक साहित्य के प्रति उत्साह वस्तुतः उनकी स्वच्छंदतावाद चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम है। नगरीय और शिष्ट समाज की कृत्रिमता के बजाय वे सहजता को पसंद करते थे। स्वच्छंदतावादी चिंतक रूसों की तरह वे मनुष्य की सहजता औश्र भावमयता को तरजीह देते हैं।

त्रिपाठी जी ने 'ज्ञान का दंड' शीर्षक से लिखित 'मानसी' संग्रह की कविता में जन जीवन की विद्रूपताओं औश्र बनावटी पन का उल्लेख किया है। वहां उनके विचारों की अभिव्यक्रित की एक सीमा थी, क्योंकि कविता के साथ–साथ उसकी संरचना के बँधकर चलना था, लेकिन ग्राम साहित्य के संकलन की भूमिका में अपने स्वच्छंदतावादी विचारों को उन्होनें दिल खोलकर रख दिया है। उन्हीं के शब्दों में –

''जब जब मनुष्य का हृदय स्वतंत्र था, तब तक उसकी भाषा भी शीशे की तरह पारदर्शक और हीरे की तरह निर्मल थी, औश्र उसमें मनुष्य का हृदय साफ दिखाई पड़ता था। जब से हृदय पर मस्तिष्क का अधिकार प्रारम्भ हुआ, बुद्धि का विकास हुआ, सभ्यता का कृत्रिम प्रकाश फैला, तब से भाषा भी धुँधली भ्रमोत्पादक और आशंकामूलम हो गई। अतएव जिसे सभ्यता का विकास कहा जाता है उसे हृदय की पराधीनता या कृत्रिमता का जागरण कहना चाहिए। वर्तमान सभ्य समाज में हृदय नाम का कोई पदार्थ नहीं है। वहां की भाषा में मस्तिष्टक ही दिखाई पड़ता है।''

इस प्रकार सभ्यता के विकास की यह एक स्वच्छंदतावादी सभ्यता समीक्षा है। कवि ने बताया है किस प्रकार सभ्यता के विकास के साथ–साथ भाव तत्त्व परे चले जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे भाववादी स्वच्छंदतावादी समीक्षक भी ऐसा ही मानते हैं कि ज्ञान के प्रसार के साथ–साथ और अभ्यता के विकास के साथ कवि कर्म कठिन होता जायेगा। लेकिन यह भी ध्यातत्व हो कि वे ज्ञान और रागत्मिका–वृत्ति के समन्वय की बात करते हैं। प्रसाद के सामने भी तर्क व ज्ञान के बढ़ते प्रभाव का संकट था। इसी कारण उन्होंने ज्ञान, क्रिया औश्र इच्छा के समन्वय की बात को 'कामयानी' के माध्यम से रखा है।

इस प्रकार हिन्दी स्वच्छंदतावाद के चौखट पर ही रामनरेश त्रिपाठी जैसा कवि सभ्यता के संकट को समझ लिया था। आचार्य शुक्ल और प्रसाद जी ने भी इस संकट को अपने–अपने दृष्टिकोण से देखा है। त्रिपाठी जी आगे लिखते हैं–

''वर्तमान सभ्य समाज हृदय ही से दूर नहीं हो गया है, प्रकृति से भी दूर चला गया है। सभ्य समाज में परस्पर विश्वास नहीं आत्मैक्य का भाव नहीं, शांति नहीं, स्वभाव नहीं। वहाँ मस्तिष्क का षडयंत्र है, भय है, आशंका है, असूया है, रोग–द्वेष है और वेश–वाणी, विवेक और व्यवहार सबमें बनावट है। सभ्य–समाज हर हास्य प्रकृति का हाहाकार है। सभ्य समाज का उन्माद प्रकृति का नैराश्य है।''

आगे उन्होनें सभ्य समाज के बनावटीपन और उसकी अस्वाभाविकता को उजागर करके रख दिया है–

''सभ्यता की वृद्धि के साथ–साथ स्वाभाविकता का ह्रास होता है। सभ्यता का संबंध मस्तिष्क से है और स्वाभाविकता का हृदय से। बहुत कम ऐसा देखने में आता है जब मस्तिष्क और हृदय में एकता हो। प्रायः हृदय के विषय में मस्तिष्क सदा झूठ बोलता हे। कितनी ही बार मनुष्य के हृदय में क्रेध उत्पन्न होता है, पर उसका मस्तिष्क शांति और विनय की बातें करता हुआ पाया जाता है। हृदय में कामना रहती है, पर मस्तिष्क मुख के द्वारा वैराग्य और त्याग की बातें करता रहता है। हृदय में लोभ रहता है, पर मस्तिष्क निस्पृहता दिखलाता रहता है। बहुत ही कम उच्चकोटि से सत्पुरूष ऐसे होंगे, जिनके हृदय और मस्तिष्ट में मेल हो। अतएव जिसे आजकल सभ्यता कहते हैं, वह एक प्रकार की अस्वाभाविकता है।''

नगरीय जीवन के इस कृत्रिम और अस्वाभावित प्रकृति के कारण एक स्वच्छंदतावादी कवि होने के कारण उनका मन ग्राम गीतों के संकलन में लगा। वे पूर्ण मनोयोग से इसके संकलन में लगे रहे यहां तक कि उनके स्वास्थ्य

पर आ बनी। संकलन के पांच वर्षों में वे मधुमेह के शिकार हो गये। क्योंकि भोजनन करने के कारण उन्हें गुड़ आदि खाकर दिन बिताना पड़ता था। मेड़ पर खेड़े होकर भीगते हुए भी वे ग्राम गीतों का संग्रह करते थे। उन्होंने इसके संग्रह के पीछे की कठिनाइयों का उल्लेख किया है कि – ''एक कठिनाई स्त्रियों से गीत लेने में पड़ती थी, स्त्रियां बोलकर लिखा ही नहीं सकतीं। बोलकर लिखाते समय उनको गीत याद ही नहीं आते।'' एक औश्र परेशानी पर्दानशीन स्त्रियों से गीत लिखवाने की थी। इन सब परेशानियों को झेलते हुए उन्होंने ग्राम गीतों का संग्रह किया। आखिर इतना कष्ट क्यों उठाया। निश्चित रूप से इसके पीछे स्वच्छंदतावादी आवेग था। यह आवेग इस कारण भी रहा होगा कि 'पथिक' मिलन और 'स्वप्न' की भांति वहां भी जीवन की क्रूर वास्तविकताओं से हटकर विस्मृति (इल्यूजन) की एक सुनहाली दुनिया थी। वरना कौन नहीं जानता कि – ''गांव का बाह्य सौंदर्य जितना नायमाभिराम होता है, उसके भीतर का दृश्य नरक से भी कम वीभत्य नहीं।'' गांव के ''जमींदारों ने नदी तालों तक के पेट बेंच लिए हैं। उन्हें मनुष्यों के पेट की चिन्ता क्या है ?'' कविता कौमुदी–पांच की भूमिका में घास बेचने वाली बुदिया से वार्तालाप के बहाने गांवों की गरीबी औश्र विपन्नता को उन्होनें उजागर किया है। उनके अनुसार, गांवों की फटी हुई दीवारें, एक बार पानी बरसजाने पर घंटों रोने वाले चिपड़े जैसे छप्पर, सड़ी हुई गलियां, अस्थि चर्मावशेष नर नारी, भयानक हाहाकार कर रहें हैं, जो कानों से नहीं आंखों से सुनाई पड़ता है।''

इस विद्रूपताओं और शोषण की भयावहताओं के बावजूद गांव के गीतों में वर्णित रूमानी इल्यूजन का संसार रामनरेश त्रिपाठी जैसे स्वच्छंदतावादी कवि को बेहद आकर्षित करत है। वहां तो कल्पनाओं में ऐसा सुखद और सुंदर देश है जो– ''नालों के किनारे, आम दे घने बागों के बीच बसा हुआ है। जिस देश में घर–घर में चंदन के वृक्ष औश्र दरवाजों के बीच चंदन के किवाड़ें लगे हैं। जहां सब सोने के थालों में भोजन करते हैं, सोने के बरतनों में पानी पीते हैं.....जहां घरों के पिछवाड़े, घनी बँसवाड़ी है। आम और महुवे के पेड़ों की छाया जहां रास्तों को शीतल और सुखद बनाये रखती है.....जहां पशु–पक्षी, वृक्षलता, सूर्य, चन्द्र और मेघ भी मनुष्य जीवन के सहचर हैं। जहां घटाएं पतियों को घर बुला लाती हैं। जहां कोयलें विरहिणियों के संदेश ले जाती हैं कि 'फागुन आ गया'.....जहां माता के अकृत्रिम स्नेह की नदी, स्त्री के अखंड की तरंगिनी हन के अपार प्रेम की सरिता और प्रकृति के शाश्वत श्रृंगार की धारा प्रवाहित है।''

इस विद्रपताओं और शोषण की भयावहताओं के बावजूद गांव के गीतों में वर्णित रूमानी इल्यूजन का संसार रामनरेश त्रिपाठी जैसे स्वच्छंदतावदी कवि को बेहद आकर्षित करता है। वहां तो कल्पनाओं में ऐसा सुखद और सुंदर देश है जो – ''नालों के किनारे, आम के घनरे बागों के बीच बसा हुआ है। जिस देश में घर–घर में चंदन के किवाड़े लगे हैं। जहां सब सोने के थालों में भाजन करते हैं, सोने के बरतनों में पानी पीते हैं.....जहां घरों के पिछवाड़े, घनी बंसवाड़ी है। आम और महुवे की छाया जहां रास्तों को शीतल और सुखद बनाये रखती है.....जहां पशु पक्षी, वृक्षलता, सूर्य, चन्द्र और मेघ भी मनुष्य जीवन के सहचर हैं। जहां घटाएं पतियों को घर बुला लाती है। यहां कोयलें विरहिणियों के संदेश ले जाती हैं कि 'फागुन आ गया'.....जहां माता के अकृत्रिम स्नेह की नदी, स्त्री के अखंड अनुराग की तरंगिनी बहन के अपार प्रेम की सरिता और प्रकृति के शाश्वत श्रृंगार की धारा प्रवाहित है।''

इस प्रकार ग्राम गीत जीवन की क्रूर वास्तविकताओं के बीच से निकालकर कुछ क्षणों के लिए सपनों की सुनहली दुनिया में जीने का बहाना है। ह्रदयहीन और क्रूर होती दुनिया के बीच एक आश्रय स्थल है।

त्रिपाठी जी द्वारा ग्राम गीत संकलन के चार प्रमुख कारण थे –

1. ''पास बैठे हैं। मगर दूर नज़र आते हैं–के भाव को समाप्त करना। उन्हें लगता था कि – ''हम अपने देश में रहते हुए भी विदेशी जैसे हैं।'' हमारे स्वयं अपने देश के बारे में जानने की इच्छा कम हो गयी है। उन्होनें पश्चिम के अन्धानुकरण पर भी टिप्पणी की है – ''हमारी आँखें तो यही हैं, किन्तु जान पड़ता है, हम योरप में जाग रहे हैं। हमारे काम तो यही हैं, किन्तु जान पड़ता है, हम योरप ही की आवाज सुन सकते हैं। हमारा मन तो यहीं है किन्तु जान पड़ता है हम केवल पश्चिम ही का स्वप्न देख सकते हैं।''
2. दूसरा कारण बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण मनुष्य के दिमाग़ में अस्वाभाविकता, कृत्रिमता और यांत्रिकता आ गई थी। लोक साहित्य का ह्रास हो रहा है। उनके अनुसार यांत्रिकता की ''आटा पीसने वाली चक्की हमारे जात के गीतों को भी पीसता जा रही है।''
3. साहित्य के क्षेत्र में हृदय की सत्ता स्थापित करने के उद्देश्य भी था। ग्रामीण जनता की स्थाभाविकता प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होनें इसका संकलना किया, क्योंकि वे मानने थे कि स्वर्ग का सुख गांव के अन्तःपुर में ही है।
4. ''भाषा के थोड़े से शब्दों की परिधि की कैद को तोड़ने के लिए वे लोक साहित्य के मुहावरों, लोकोक्तियों और शब्दों को साहित्य में प्रतिष्ठित करना चाहते थे।''

ग्राम गीतों के संकलन के पीछे निहित आकांक्षा यह भी थी कि देशी या देहातीपन को लेकर एक जो हीनता की ग्रंथि थी, उसे निकाला जाए। त्रिपाठी जी ने स्पष्ट किया है कि भोली भाली ग्रामीण स्त्रियों का लोकगीत भी पूर्ण कविता है। लाला लाजपत राय ने त्रिपाठी जी को उनके संकलन कार्य पर बधाई दी और बताया कि हमारे देश के सामाजिक और नैतिक आदर्श इन्हीं लोकगीतों में निहित हैं। उन्होनें बताया हम प्रतिदिन इसे खो रहे हैं और इसका लुप्त हो जाना वास्तव में एक हादसा होगा।

यह त्रिपाठी जी की स्वच्छंद चेतना ही है जो मानती है कि लोकगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस हैं, छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।

त्रिपाठी जी जब ग्राम साहित्य का संग्रह करने बैठे थे तो उनके सामने ग्राम गीत की अंतर्धारा की सुनहली सुखद दुनिया तो थी ही, लेकिन उनके सामने वह दुनिया भी थी, जिसमें एक बुढ़िया दिन भी घास काटकर परिवार के लिए एक पैसे के नमक का जुगाड़ नहीं कर पाती है, चार रोज से बिना नमक के खा रही है। अपने नाती के लिए एक महीने से गुड़ खिलाने का वादा पूरा करने में असमर्थ पाती हे। आज के दिन उसने गुड़ खिलाने का वादा भी कर रखा था। उसे नाती के लिए पूरा न कर पाने की वेदना से गुढ़िया की आँखें डबडबा जाती हैं। भुखमरी और गरीबी के भयावह दंश को झेलती बुढ़िया की व्यथा से त्रिपाठी जी जैसे लोकसंवेदना से युक्त रचनाकार व्यथित हो जाते हैं। वे लिखते हैं – ''बुढ़िया की करूण–कहानी सुनकर मैं तो डबूने उतराने लगा। कहां तो काव्य के नवरसों की मिथ्या और अस्वाभावित कल्पना और कहां साक्षात् मूर्तिमान करूण रस का दर्शन। मैं निस्तब्ध हो गया।''

त्रिपाठी जी को गाँवों की इस गरीबी और दुर्दशा ने बेचैन कर दिया। उनका ध्यान उस बिडम्बना की ओर गया कि एक तरफ तो लोक–गीतों में गांव के लोग सोने के बरतनों में खाते–पीते हैं, प्रत्येक घर में चन्दन केवड़िया हुआ करती हैं, तो दूसरी तरफ और दुःख ही दुःख है।

"यहाद्द तो सुख नाम का कोई पदार्थ कहीं दिखाई ही नहीं पड़ता।" त्रिपाठी जी के मतानुसार ग्रामीण गरीबी ही समस्त दुःखों की मूल है। किसी तरह गरीबी हट जाए तो गांव वालों में ऐसे सद्‌गुण चमक उठेंगे, "जो संसार के किसी भी सभ्य–समाज के लिए आदर्श माने जाएंगे।" लोकगीतों के संग्रह में उनके सामने दिक्कतें बहुत अधिक आईं। सर्वप्रथम परेशानी यह थी कि – "स्त्रियाँ गीत बोलकर लिख ही नहीं सकती। बोलकर लिखाते समय उनको गीत याद ही नहीं आते। वे गाती जायें और कोई लिखता जाए, तभी काम हो सकता है। सो भी कई स्त्रियाँ एक साथ बैठकर गावें, तभी उनके दिमाग में गीत की कड़ियाँ पंखुड़ियों की तरह खुलती रहती हैं। अकेला गाने में शायद ही कोई स्त्री पूरा गीत गा सके। युवती स्त्रियों से गीत लेने में तो और भी कठिनाई है। एक तो परदा। पर–पुरुष के सामने गाने के लिए लज्जावश उनका कण्ठ ही नहीं फूटता। कन्याएं तो बहुत ही कम ऐसी मिलती हैं जो पूरा गीत जानती हों। कारण यह जान पड़ता है कि गीत याद करने का काम तो स्त्रियों का जन्म–भर के लिए है। दस–पांच मिलकर गाती है, तब किसी को कोई कड़ी याद आ जाती है, किसी को कोई।" दूसरी समस्या स्त्रियों के स्मरणशक्ति की थी। इसी कारण वे लिखते हैं कि गीत संग्रह के दौरान "मेरे तो धैर्य की परीक्षा हो जाया करती थी। कभी–कभी तो एक–एक गीत के लिए पूरा दिन लग गया है। फिर भी शाम होने तक उनकी एक–दो कड़ियां संदिग्ध ही थीं। कभी–कभी एक गीत एक गांव में अधूरा ही प्रचलित मिलता। उसकी पूर्ति दूसरे गांव में होती। इस प्रकार एक–एक गीत के पीछे पड़े बिना सच्चा काम नहीं हो सकता था।" लोक–गीत संग्रह के दौरान शरीर और मन का कष्ट इतना अधिक था कि इसके लिए उनका "शरीर और मन असमर्थ था। केवल गीतों के लिए सच्ची लगन ही मुझे तकलीफों से पार लगाने में असमर्थ था। केवल गीतों के लिए सच्ची लगन ही मुझे तकलीफों से पार लगाने में समर्थ हुई हैं।"

उनके ग्राम–गीत संग्रह में स्त्रियों की भूमिका और त्रिपाठी जी द्वारा उनकी सराहना में भी त्रिपाठी जी की स्वच्छंद चेतना को तलाश किया जा सकता है। जिस प्रकार रात में ईंखा पेरने वाला किसान हृदय से मधुर रस निकालकर अपने कष्टों को दूर करता है, वही बात स्त्रियों के संदर्भ में भी है। इसी कारण त्रिपाठी जी ने स्पष्ट तौर पर लिखा है कि – "पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अपने कामों में गीतों की सहायता अधिक ली है ..... जांत पीसने, धान रोपने, खेत निराने, खेत गोड़ने और काटने के समय गांव की स्त्रियां जो गीत गाती हैं, उनमें गृहस्थी के सुख–दुःख की बड़ी ही मार्मिक बातें भरी होती हैं।" "बाबा निमियाा क डारि जिनि कोटऊ नामक विदाई गीत जैसी मार्मिकता एवं वेदना अनेक गीतों में है। इस प्रकार स्त्रियों के लिए गीत एक तरफ श्रम–परिहार का जरिया बनते हैं तो दूसरी ओर उनकी दबी–कुचली आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति के साधन भी बनते हैं। अतः "माई के रोये से नदिया बहत है" जैसी उक्तियाँ अपनी अतिशयोक्ति में भी एक गहरी टीस छिपाये रहती है। और पुत्र के लिए तो माँ के हृदय की कलप कुम्हार के आवों के भीतर ही भीतर रह–रहकर भभक उठने के समान है –

जइसे कुम्हार क औवाँ त भभकि–भभकि रहै,
बेटा, वैसई माई क करेजवा त धधकि–धधकि रहै।

लोकगीतों में प्रकृति के स्वाभाविक उद्‌गार और भाव सहज रूप में अभिव्यक्त हो जाते हैं। लोकगीत में अनुभूतियाँ सहज रूप में बिना किसी बनाव व निखार के प्रकट हो जाती हैं जैसे निम्नलिखित लोकगीत में एक कन्या ससुराल जा रही है। घर के सामने एक नीम का

पेड़ है, जो शायद उसी ने रोपा होगा। उसके लिए वह बाबा से कहती है –

बाबा निमिया का पेड़ जिनि काटेऊ,
निमिया चिरैया बसेर, बलैया लेऊ बीरन (टेक)
बाबा बिटियऊ जिनि केउ दुख देउ
बिटिया चिरैया की नाईं (टेक)
सब रे चिरैया उड़ि जइहैं
रहि जइहै निमिया अकेलि (टेक)
सब रे बिटियवां जइहैं सासुर,
रहि जइहैं भाई अकेलि। (टेक)

जितनी गहरी संवेदनात्मक गहराई के साथ भावों की अभिव्यक्ति हुई हैं। चिड़ियाँ बेटियाँ बन जाती हैं। अतः छूटते घरौंदे का दुःख उनमें है और नीम; नीम के प्रतीक के रूप में माँ हैं। अब जबकि नमी माँ के समान है तो "बाबा निमिया के पेड़ जिनि काटेऊ" को एक नई भावभूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया।

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसके ग्राम गीत संग्रह की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि–''आपने साहित्य के इस अछूते अंश की पूर्ति करके बड़ा काम किया। बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी। पुस्तक के आरंभिक सौ पृष्ठ तो अनमोल ही हैं। उनमें विषय की विवेचना और आपके साहित्य ज्ञान की राशियां भरी मिलीं।'' ध्यातव्य है कि द्विवेदी जी ने जिन आरंभिक सौ पृष्ठों का जिक्र किया है वे ग्राम साहित्य की भूमिका और ग्राम गीत का परिचय है। इन पृष्ठों में त्रिपाठी जी ने अपने स्वच्छंदतावादी विचारों को खुलकर रख दिया है।

दरअसल 'कविता–कौमुदी' के अन्द संकलनों की अपनेक्षा कविता कौमुदी का ग्राम गीत वाला अंश अधिक महत्त्वपूर्ण है। कविता–कौमुदी के अन्य संग्रहों में उनकी आत्माभिव्यक्ति के लिए उनकी जगह नहीं थी। कविता कौमुदी के 'ग्राम साहित्य' वाले भाग में वे करीब सत्तर पृष्ठों की भूमिका लिखते हैं और 138 पृष्ठों में ग्रामगीतों का परिचय देते हैं। कुल 208 पृष्ठों में करीब सौ पृष्ठों में उन्होंने अपनी रूमान चेतना के मुताबिक ग्राम साहित्य संवेदनाओं, उसकी स्वाभाविकता और हृदयग्राहिता को उजागर किया है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात है कि कविता–कौमुदी के सीरीज में ग्राम–साहित्य वाले अंश को प्रकाशित करके भोली–भाली ग्रामीण–जनता की संवेदना को साहित्यिक ऊँचाई पर प्रतिष्ठित किया। ग्राम–साहित्य के क्षेत्र में उनके अवदान को देखकर डॉ. बैजनाथ सिंह की यह टिप्पणी उचित ही है कि – ''पंडिक जी हिन्दी ग्राम–साहित्य के विलियम बर्न्स थे, जिन्होंने सरल भाषा में ग्रामीण जीवन पर कविता, कहानी तथा नाटक लिखने के साथ–साथ ग्राम–गीतों का अद्‌भुत संकलन किया, जिसमें भारतीय ग्रीमण जीवन की मार्मिक पूरी तरह व्यक्त होती है।''

ग्राम–गीतों के संपादन का एक पहलू लोकभाषा की प्रतिष्ठा है। रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि–''आज हिंदी या हिन्दुस्तानी भाषा का जो रूप हमें दिखाई पड़ता है, वह गांव की टक्साल में ढला हुआ है। हिन्दी के आदि जन्मदाता गांव वाले ही हैं। उन्होंने संस्कृत शब्दों को हिन्दी का रूप दिया है, विद्वानों और पंडितों ने नहीं।'' इसी कारण उन्होंने लोक–साहित्य को शब्दों की टकसाल कहा है। वहां सिर्फ शब्द गढ़े नहीं जाते हैं बल्कि शब्दों के पीछे नई भावना, नये ध्वन्यार्थ भरे जाते हैं। इसी कारण तथाकथिक भ्रद्रलोक का साहित्य यदि ग्राम–साहित्य के संपर्क में रहे तो उसे न सिर्फ नये शब्द मिलेंगे, बल्कि शब्दों के नये अर्थ भी मिलेंगे। कई बार गांव के कई सार्थक शब्द भद्र–जनों के साहित्य में नहीं होते। उदाहरण के लिए पशु–पक्षियों को उड़ाने के लिए 'धोख' शब्द। इसी प्रकार कुछ–कुछ 'एवायड' करने के अर्थ में 'बराना' शब्द है, या हिन्दी की लोक–भाषाओं का बहु–प्रयुक्त शब्द है, जबकि परिनिष्ठित हिन्दी में नहीं है।

इतना ही नहीं कहावतों, मुहावरों, नीति–सूक्तों को दृष्टि में रखते हुए लोक–साहित्य को वे 'मौखिक विश्वविद्यालय' भी कहते हैं।

त्रिपाठी जी को इस बात का बहुत कष्ट है कि – "हम अपने देशवासियों से ही अपरिचित हैं।" उन्होंने बताया है कि अंग्रेजी में ग्राम–गीत–साहित्य पर सैकड़ों पुस्तकें हैं। विभिन्न जातियों के रस्म–रिवाजों की जानकारी के लिए अंग्रेज विद्वानों ने अपना एक–एक जीवन लगा दिया है और अपने देशवासियों के कल्याण के लिए मातृभाषा का भण्डारा भरा है।" इस प्रकार ग्रामीण–जनों के साहित्य को मुख्यधारा में लाने के पीछे उनकी मंशा यह भी थी कि हिंदी ओर देशवासियों की सेवा की जाए। भद्रजनों के साहित्य को लोक का भाव और आवेग प्रदान किया जाए तथा लोक की प्रतिष्ठा की जाए। उनकी भावनाओं को भी साहित्यिक स्तर प्रदान किया जाए। इस प्रकार यहाँ देश–सेवा का व्रत दो स्तरों पर प्रतिफलित होता है।

ग्राम–गीत का परिचय में उन्होंने बताया है कि ग्राम–गीतों की सहज भावोच्छलता के बावजूद उन्हें अगंभीर रूप में नहीं लेना चाहिए। उसमें भी गहरी प्रतीकात्मकता हो सकती है जैसे इस लोकगीत में –

"आधे तलवा हँस चूनै, आधे में हंसिनी।
तबहूँ न तलवा सोहावन, एकरे कमल बिनु।।"

अपनी प्रतीकात्मकता में यह वस्तुतः स्त्री–पुरुष संबंध और उस संबंध की सार्थकता को बताती है। आखिर ग्रामीण संदर्भो में संतान से ही इस रिश्ते को अर्थ मिलता है। यह प्रतीकात्मकता ऐसी नहीं है कि जान–बूझकर ला दी गयी हो। वह सहज उच्छ्वास है। किसी अनाम ग्रामीण कवि या कवियित्री के हृदय का उच्छ्वास है यह। यह सज उच्छ्वास इस कारण आया है, "क्योंकि सभ्य–समाज को मोहने वाली सभ्यता से ग्रामीण कवि अपरिचित होते हैं। इससे अपनी बातों में वे कृत्रिमता नहीं ला सकते। उनके हृदय में जो भाव रहता है, मस्तिष्क वही कह देता है। उसमें अपनी ओर से नमक–मिर्च नहीं लगाता। समय का प्रभाव है कि ऐसे सत्यवादी लोग असभ्य कहे जाते हैं और हृदय से कुछ और मुँह से कुछ और कहने वाले सभ्य।"

त्रिपाठी जी ग्राम–गीतों को "हृदय का धन" मानते थे। इसी प्रकार वे इसमें रस का निदर्शन करते हैं। इसके विपरीत महाकाव्यों में अलंकार होता है, अलंकार मनुष्य निर्मित हैं। मस्तिष्कीय हैं। यह उन थोड़े–से पढ़े–लिखे लोगों के लिए है, जो इससे परिचित हैं। इन्हीं तथ्यों के आलोक में त्रिपाठी जी दावा करते हैं कि – "ग्राम–गीतों की महिमा महाकवियों की वाणी से कहीं अधिक है।" इस तथ्य पर और जोर देते हुए एक सच्चे रूमानी कवि के लहजे में वे कहते हैं, "ग्राम–गीतों में मनुष्य के हृदय का शुद्ध प्रतिबिम्ब है। अलंकारों ने कवियों को और साहित्य–मर्मज्ञों को मिथ्या कल्पना के ऐसे मैदान में ले जाकर खड़ा कर दिया है जहाँ मस्तिष्क के दाँव–पेंच के सिवा और कुछ नहीं है।"

ग्राम–गीतों का एक पक्ष यह भी है इसने नारियों को गरिमा प्रदान की। स्त्रियों के गीतों को लेकर अब जो ग्रंथि चली आ रही थी उसे त्रिपाठी जी ने तोड़ा है – उसे गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया है। उन्होंने उनके गीतों को "उच्च कोटि की कविता से पूर्ण" कहा। इस बात पर और जोर देने के लिए उन्होंने कहा कि – "बिना पढ़ी–लिखी स्त्रियों के गीतों में वह रस भरा है जिसे पाकर कितने ही विद्वान पुरुष कवि ध्वन सकते हैं। जिस श्रवण कर कितने ही छायावादी मायावादी कवि हाथ से कलम रख दे सकते हैं। अतएव स्त्रियों को अपनी इस नैसर्गिक सम्पत्ति पर गर्व करना चाहिए।" अब इसी ग्राम–गीत की भावमयता, अनुभव संकुलता और लाक्षणिकता क्या किसी भद्रलोक के कवि से कम है–

उड़त–उड़त तू जायो रे सुगना बैठेउ डरिया ओनाय।
डरिया ओनाय बैठा पखना फुलायउ चितया नजरिया घुमाय।।

ग्राम–साहित्य (तीसरा भाग) त्रिपाठी जी की लोक–संपृक्ति दूसरा महत्वपूर्ण उदाहरण है। आपने सन् 1925 से ग्राम–गीतों के संग्रह का काम शुरू किया था। उसी समय कुछ कहावतें भी एकत्र कर ली थीं। त्रिपाठी जी के अनुसार – "इस संग्रह से ज्ञान–वर्द्धन और मनोरंजन के सिवा एक लाभयह होगा कि कहावतों की उपादेयता पर शिक्षित जनता का ध्यान आकर्षित होगा और वे इसका उपयोग करके हिन्दी भाषा का सौन्दर्य बढ़ायेंगे।" ग्राम–साहित्य (तीसरा भाग) में उन्होंने वर्षा के लक्षण, खेती–किसानी, लोकमान्यताओं और रीतियों तथा खुसरो, तुलसी, कबीर, गिरधर, वृन्द, घाघ, घासीराम, लाल बुझक्कड़, माधौदास आदि की लोक में व्याप्त कहावतें और पहेलियाँ दी हैं। खेती की बोआई, निराई, सिंचाई, कटाई, मंड़ाई व ओसाई से सम्बन्धित कहावतें उनकी लोक चेतना की प्रबल पक्षधरता को स्पष्ट करती हैं। इसमें उन्होंने उत्तर भारत के ग्रामीण किसान–जीवन की अभिव्यक्तियों को संग्रहित किया है।

अतः यह बात बहुत ही स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है कि कवि के द्वारा ग्राम–गीत का संकलन उनके स्वच्छंदतावादी चेतना के अनुरूप ही है। यह भी ध्यातव्य है कि उनके द्वारा ग्राम गीतों के संकलन का काल उनके स्वच्छंदतावादी चेतना की सघनता का काल है। यह 'पथिक' और 'स्वप्न' खण्डकाव्यों के बीच का काल है। लेकिन इसमें निहित स्वच्छंदतावादी चेतना के अलावा इनका साहित्य–जगत में महत्वपूर्ण स्थान भी है। जैसा कि 'पीयूष' जी ने लिखा है कि ग्राम–गीतों में अंतर्निहित प्रौढ़ अनुभूति और कवित्व को उन्होंने मर्मस्पर्शिता से तत्कालीन कवियों, लेखकों और नेताओं को समझाया था ..... ग्राम–साहित्य चिरकाल तक त्रिपाठी जी का ऋणी रहेगा और हमारे साहित्य को उनकी यह देन अनादिकाल तक उन्हें मूर्धन्य स्थान पर सुशोभित रखेगी।

बाल–साहित्य त्रिपाठी जी की स्वच्छंद–वृत्ति में निहित लोक चेतना का ही एक उदाहरण है। असल में सहजता, नैसर्गिकता, भोलापन और मासूमियत जैसे गुण स्वच्छंदतावादी कवियों को बहुत प्रिय है। बचपन इन सब गुणों का प्रतिरूप है। मानव–स्वभाव के सहजता का उत्कर्ष भी बालपन है। साहित्य में बच्चों का कोना इसी को अभिव्यक्त करता है।

स्वच्छंदतावादी चेतना को उदसकी समग्रता में अभिव्यक्ति प्रदान करने के प्रयास के कारण त्रिपाठी जी का ध्यान बाल–साहित्य की ओर भी गया। उन्होंने लिखा है कि – "हिन्दी में बाल–साहित्य का अभाव मुझे बहुत दिनों से खटक रहा था।" कविता लेखन, इतिहास और आलोचना उनके सृजन के केन्द्र में था। किन्तु इस कमी के आभास हो जाने के बाद उन्होंने 'बाल–कथा–कहानी' का पहला भाग लिखा। उन्होंने यह महसूस किया कि – "बच्चों के लिये कहानियां लिखने में मुझे बच्चों के साथ खेलने का सा आनन्द आता है।" बच्चों की कहानियां लिखना उन्हें बहुत रोचक लगा।

उनकी 'बाल–कथा–भारती' को अभूतपूर्व सफलता मिली। उसकी अनेकों प्रतियां बिकीं। दस से ज्यादा संस्करण प्रकाशित हुए। इसका कारण यह था कि इसमें बच्चों के लिए कहानियों के अलावा गहरा सामाजिक संदेश भी होता था। कहानियाँ देशप्रेम, समाज–सेवा, सच्चाई और अहिंसा का पाठ पढ़ाती थीं। सत्य की विजय का विश्वास भी इनकी कहानियों के माध्यम से मिलता था। 'आदमी की कीमत', 'बेलकुमारी', 'फूलरानी', 'भय बिन होय न प्रीति', 'डंक' आदि इसी तरह की कहानियाँ हैं।

मौलिक बाल कहानी लेखन के अलावा त्रिपाठी जी ने युग–युगान्तर से चली आ रही बाल कहानियों का संग्रह किया। ये बाल कहानियाँ लोक–कथा के रूप में प्रचलित थीं। इन कहानियों की ओर भी त्रिपाठी जी का ध्यान गया। इस तरह की अधिकतर कहानियाँ शौर्यपूर्ण यात्राओं से संबंधित है। इन शौर्यपूर्ण यात्राओं के उपरान्त अंततः बच्चों को विजय मिलती है और वे पुरस्कृत होते हैं। परियों और देवियों पर आधारित अनेक बाल–कथाओं की ओर त्रिपाठी जी का ध्यान गया।

बाल–कथाओं के अलावा बालकों को सीख देने से उद्देश्य से उन्होंने 'मोहन भोग' और 'मोहन–माला' नामक बाल पदावली का संकलन किया। 'वानर संगीत' नामक गेय नाटक लिखा। 'बाल कौतुक', 'नेता बुझौवल' जैसी पुस्तकें लिखीं। बच्चों के लिए 'वानर' नामक पत्र का भी संपादन किया।

त्रिपाठी जी के अनुसार – 'बच्चों के लिये कहानी लिखना कठिन काम है। बच्चों की दुनिया न्यारी होती है।" इसके लिए बाल मनोविज्ञान की भावमय समझ के साथ–साथ बच्चों के समान भाषा और पदावली का प्रयोग भी करना पड़ता है। त्रिपाठी जी ने यह दिशा में अच्छे प्रयास किये हैं। बाल–साहित्य के क्षेत्र में उनके प्रारम्भि अवदान के कारण ही कमलापति मिश्र उन्हें 'बाल–वांड्.मयका वाल्मीकि' मानते हैं।"

नवम्बर 1937 में उन्होंने बच्चों के लिए 'पेखन' नामक नाटक लिखा। उसकी भूमिका में वे लिखते हैं, ''बच्चों के साहित्य में मेरी स्वाभाविक रुचि है। मैंने उनके लिए गद्य में कहानियाँ लिख दीं, बुझौवल, गोरख धन्धा और तारा तैयार कर दिये और खेल के लिए बना दिये। केवल नाटक रहा गये थे..... आज मैं अपनी यह इच्छा भी पूरा कर सका।'' पेखन शब्द प्रेक्षण का अपभ्रंश है। इसका अर्थ है– तमाशा। इसमें 'मंगल मंदिर', कर्तव्य–पालन', 'ध्रुव', 'एकलव्य', 'इन्द्र का अखाड़ा', मौत के सिपाही' नामक छः नाटक हैं। इनमें 'मौ के सिपाही' महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें खद्दर का कुरता, धोती और टोपी पहने लड़के गाते हैं – जो हैया, मलेरिया आदि से संघर्ष करते हैं। इन बच्चों में देश की सेवा का ज़ज्बा है –

जो लोग गरीब भिखारी हैं,
जिन पर न किसी की छाया है,
हम उनको गले लगाएँगे।

.....

जो लोक हारकर बैठे हैं,
उम्मीद मारकर बैठे हैं।
हम उनके बुझे दिमागों में
हिम्मत की आग जलायेंगे।
रोको मत आगे बढ़ने दो
आज़ादी के दीवाने हैं
हम जन्म–भूमि की सेवा में,
अपना सर्वस्व लगाएँगे।

इस प्रकार राष्ट्रप्रेम के रूमानी ज़ज्बे को वे बच्चे के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।

रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविका–कौमुदी' नाम से काव्य संग्रहों का छह भागों में संपादन किया है। प्रथम और द्वितीय भाग क्रमशः प्राचीन और आधुनिक हिन्दी से संबंधित है। तीसरा भाग ग्रामगीतों का संकलन है। चौथा भाग उर्दू गज़लों व नज़्मों का संग्रह है। पाँचवाँ भाग संस्कृत कविताओं का संग्रह है। छठे भाग में बांग्ला कविताओं का संपादन किया है। अलग–अलग प्रकार की कविताओं को लोक में प्रसारित करने की दृष्टि से 'कविता कौमुदी' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

ये कविताएँ संपादित हैं। उनकी मौलिक कृतियाँ नहीं हैं। फिर भी इसमें भी उनकी स्वच्छंदतावादी चेतना को तलाश किया जा सकता

है। कविताओं के चयन में उनके हृदय के भाव–सौन्दर्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भावमय, मुक्तिकामी और प्रकृति–सौंदर्य से युक्त कविताओं को उन्होनं अधिक महत्त्व दिया है।

दरअसल, 'कविता कौमुदी' भी उनके साहित्य–कर्म का ही एक हिस्सा है। उनकी साहित्यिक संवेदनाओं का गहरा प्रतिबिन्ब इसके संकलन में दिखाई पड़ता है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इसका उल्लेख किया है कि 'कविता–कौमुदी' उने धुन, लगन और अध्यवसाय के प्रमाण–स्वरूप हैं। इसे हम उनकी 'कीर्ति स्तम्भ' भी कह सकते हैं।'' रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने उनके 'कविता कौमुदी' के संपादन – कर्म की मुक्त–कुंठ प्रशंसा की थी।

कविता–कौमुदी के संपादन में स्वच्छंदतावादी तत्त्व उनके द्वारा लिखी गयी भूमिका में है। आमतौर पर वह भूमिका में अपने मंतव्यों को डाल ही देते हैं यथा 'कविता कौमुदी' पहला भाग की भूमिका में वे लिखते हैं, ''काव्य कवि के हृदय का गान है,.....जिस कवि का हृदय जितना सुन्दर होता है, वह उतना ही मधुर गान कर सकता है।'' लेकिन उसी में वे कविता को बुद्धि का सौंदर्य भी कहते हैं, और कविता का विवेचल शास्त्रीय पद्धति पर करते हैं। ''हृदय एक पुष्प है, भाषा उसका विकास है, और भावगंध है'' – जैसा विवेचन करने वाला साहित्यकार कविता की लाक्षणिकता और मौलिकता के बजाय उसे परंपरागत दृष्टि से देखता है, यह गौरतलब बात है।

उनके –कविता कौमुदी' के संपादन पर बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है कि– ''साधारण जनता में कविता के प्रति रूचि उत्पन्न करने में उनकी कविता कौमुदी.....ने बड़ा जबरदस्त काम किया था।''

इतना ही नहीं 1954 ई. में वे 'नीति रत्नावली' का संपादन करते हैं। इसमें वे मानते हैं कि इससे 'व्यवहार–बुद्धि' आयेगी तथा उत्तम और निर्दोष जीवन बिताने की अन्यः प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार एक स्वच्छंदतावादी कवि की इस प्रकार की पतिणति को पाता है औश्र किसी को भी इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इसका कारण है कि कमोवेश सारे स्वच्छंदतावादियों की परिणति कुछ ऐसी ही होती रही है।

हमें इस पर गौर करना है कि क्या कारण है कि क्या कारण है कि – '' स्वच्छंदतावादी संस्पर्श वाले रामनरेश त्रिपाठी को इस बात पर खेद है कि उनके सभकालीन रचनाकारों को 'काव्यशास्त्र' संबंधी अनिभाता'' है। कहने का आशय यह है कि क्यों त्रिपाठी जी जैसा स्वच्छंदतावादी तेवर वाला कवि अपने परवर्ती रचनाकाल में कैनन को अपनाने पर जोर दे रहा है। इसका जवाब भी स्वयं स्वच्छंदतावादी आंदोलन में निहित है।

दरसअल स्वच्छंदतावादी कवि का रचनाकार दीर्घायु नहीं होता। इतिहास इस तथ्य का साथी है कि या तो अल्पायु में ही इसका निधन हो जाता है। जॉन कीट्स, पी.बी. शैली बायरन और जयशंकर प्रसाद जैसे कवियों को लम्बी उम्र नसीब नहीं हुई थी। वर्ईसवर्थ, टैनीसन, निराला, सुमित्रानंनदन पंत और महादेवी वर्मा अधिक दिनों तक जीवित रहे। इसमें वर्ड्सवथ के रचनाकार की परिधति यह हुई थी कि वे 'पोएट लॉरिएट' भले बना दिये गये थे, लेकिन अपने उम्र के आखिरी दिनों तक वे अपने रूमानी रचाकार की लाश ही ढ़ोते रहे। 'लिरिकल बैलेड्स' जैसा कुछ नहीं दे पाये। उनकी बाद की कविताओं में 'लूसी श्रृंखला', 'द थान' और और 'टिन्टर्न एबी' जैसा उत्कर्ष नहीं रह गया था। हाँ, टैनीसन अधिक दिनों तक रचना करते रहे, किन्तु उनका स्वच्छंदतावादी तेवर भी तो जरा नरम था। निरला के बारे में हम अच्छी तरह से जानते हैं कि – ''सरोज–स्मृति' की वेदना का साक्षात् प्रस्फुटन उन्हें ठोस धरातल पर ला पटका था। 'वनवेला' में भी उसकी यथार्थ की छवियाँ दिख जाती हैं। बाद

में वे प्रतिशील कविता के प्रस्ताव बनते हैं। पंत जी की रचनाकात्मक छायावादी स्वच्छंदतावाद को पार करती हुई 'युगवाणी' व 'ग्राम्य' तक की यात्रा करती है। अन्त में उनके रचनाकार का संन्याय 'लोकायतन' तथा 'कला' और 'बूढ़ा चाँद' में प्रतिफलित होता है।''

इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी का स्वच्छंदतावादी रचनाकार अल्पायु ही रहा। वैसे तो वे सन् 1962 ई. तक जीवित रहे। इस दौर साहित्य के क्षेत्र में कमोवेश उनकी सक्रियता बनी ही रही। लेकिन इस बात को मैं विशेष रूप से रेखांकित करना चाहूँगा कि 'स्वप्न' (1928) के बाद से उनके साहित्यकार की स्वच्छंदतावाद सांद्रता मद्धिम पड़ने लगती है। उनके आगे की रचनाओं में 'स्वप्न' जैसा स्वच्छंदतावादी तेवर एक स्वप्न ही बनकर रह जाता है। इसके बाद वे 'हैट के गुण, 'नेता बुझौवल' और नीति रत्नावलियाँ ही लिखते रहे। 'जयन्त', 'पैसा परमेश्वर' जैसा नाटक भी लिखा। लेकिन उसमें स्वच्छंदतावादी चेतना नहीं है।

उन्होंने 'वफाती चाचा'' सुप्रसिद्ध कहानी लिखी। इसमें साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने का संदेश दिया गया है। इसी तरह उनकी बाद की अधिकतर रचनाओं में नीति उपदेश, संदेश आदि प्रधान हो गय। उनमें स्वच्छंदतावाद की काल्पनिकता, लाक्षधिकता और संवेदनात्मक सूक्ष्मता नहीं रही। अतः यह मानने में कोई हिचक होनी चाहिए कि सन् 1928 के आस–पास से रामनरेश त्रिपाठी का स्वच्छंदतावादी रचनाकार मरने लगा था। जहां तक 'कविता कौमुदी' (ग्राम–गीत) का संबंध है, इसे बता देना जरूरी है कि इस पर काम करना 1924 ई. के आस–पास शुरू कर चुके थे, और इन दिनों उनका स्वच्छंदतावादी आवेग अपने चरम पर था।

लेकिन एक स्वर जो उनकी पूरी रचनाधर्मिता में आजीवन विद्यमान रहा, वह था लोकसंपृक्ति का स्वर। प्रकृति–प्रेम से लेकर राष्ट्रप्रेम, बाल–साहित्य से लेकर 'वफाची चाचा' जैसी सोद्देश्य रचनाओं में यह स्वर निरंतर बना रहा। इसी कारण यदि त्रिपाठी को जो लोकचेतना को अनन्य गायक कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

संदर्भ

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ–342
- श्री बालकुष्ण राव : सम्मेलन पत्रिका, पृ–159
- बनारसीदास चतुर्वेदी : सम्मेलन पत्रिका, पृ–162, 163
- डॉ. विद्यानिवास मिश्र : लोक औश्र लोक का स्वर, पृ–84
- वही – पृ–86
- श्री कृष्ण दास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, पृ–215
- ग्राहम ह्यूज : रोमांटिक पोएट्स, पृ–71
- एन्थेनी जॉन हार्डिंग : द रिसेप्शन ऑफ इंग्लिश रोमांटिसिज्म
- श्याम बिहारी मिश्र : छायावाद की परिक्रमा, पृ–265
- राम नरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, पांच ग्राम गीतों का परिचय, पृ–1
- आचार्य रामचन्द्र : चिंतामणि भाग–1, पृ–150
- सम्मेलन, पत्रिका : श्रद्धांजलि अंक, पृ–207
- रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी – पांच, पृ–12

Copyright © 2016, Dr. R.P. Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.